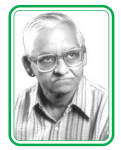

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 | अक्टूबर-2012 | अंक-10

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

अष्टावक्र गीता (2.8) में अष्टावक्र जी के अनुसार :-

प्रकाशो मे निजं रूप नातिरिक्तौऽस्म्यहं ततः।
यदा प्रकाशते विश्वं तदाऽहंभस एव हि॥

प्रकाश मेरा अपना स्वरूप है। मैं उससे पृथक् नहीं हूं। जब विश्व प्रकाशित होता है, तब वह मेरे ही प्रकाश से प्रकाशित होता है।

सावधान !

''आज तक आपने जगत का जो कुछ भी जाना है... जो कुछ भी प्राप्त किया है... आज के बाद जो जानोगे और प्राप्त करोगे: प्यारे भैया! वह सब मृत्यु के एक ही झटके में छूट जायेगा... जाना अनजाना हो जायेगा...प्राप्ति अप्राप्ति में बदल जायेगी।

अतः सावधान हो जाओ। अंतर्मुख होकर अपने अविचल आत्मा को... निज स्वरूप के अगाध आनंद को... शाश्वत शांति को प्राप्त कर लो। फिर तो आप ही अविनाशी आत्मा हो।''

-पूज्यपाद संत श्री आसाराम जी बापू

संत श्री आसाराम जी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-5
फोन : 7486310, 7486702

(संत कबीर)

गुरु और परमात्मा : अलग होते हुए भी एक हैं

✍ पं० विजयशंकर मेहता

गुरु और शिष्य के रिश्ते में स्थितियों के अनुसार भाव नहीं बदलने चाहिएं। यह रिश्ता भरोसे पर टिका है। शक्तिपात के संत स्वामी शिवोमतीर्थ कबीरदास जी का उदाहरण देते हुए कहा करते थे: जब भक्त के सामने गुरु तथा गोबिन्द दोनों एक साथ आ खड़े हुए। भक्त बेचारा परेशान कि किसको पहले प्रणाम करे? उसका उत्तर भी कबीर साहिब स्वयं ही देते हैं-

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काइ के लागूं पाए ?
बलिहारी गुरु, आपने ! गोविन्द दियो बतलाए॥

कि मैं तो अपने गुरु महाराज का बलिहारी हूं, जिनके द्वारा तथा जिनकी कृपा से मुझे गोविन्द के दर्शन हुए। बात भी ठीक है: भक्त के लिए तो गुरु भगवान से भी बड़े हैं।

ईश्वर तो अपनी चेतना शक्ति को संसार की ओर मोड़कर मनुष्य को जन्म देते हुए माया रच देते हैं। जगत को माया से भ्रमित कर देते हैं। जीवों को जन्म-मरण के चक्र में घुमा देते हैं। फिर जीव जैसे कर्म करता है: वैसा ही फल देते हैं। भगवान ने तमाशा देखने के लिए क्या-क्या कौतुक रचे हैं? मानवों-जीवों को माया के गहरे गर्त में धकेल दिया है। अविद्या से उनकी बुद्धि का हरण कर लिया। सुख-दुख भोगें बेचारे जीव: तथा तमाशा देखने का आनंद भगवान ले।

गुरु ठीक इसके विपरीत हैं। वे शक्ति के जगदामुखी प्रवाह को पलटकर

अंतर्मुखी कर देते हैं। जीव में शक्ति का चक्र उलटा घूमने लगता है। संचित संस्कार क्षीण होकर चित्त निर्मल होने लगता है। अंतर का भ्रम विलीन अर्थात अविद्या का आवरण उतरने लगता है।

गुरु के आशीर्वाद तथा कृपा-शक्ति से जीव का बंधन टूटने लगता है। उसे अंधकार (Ignorance) और भ्रम (Uncertainty) से मुक्ति मिल जाती है तथा जन्म-मरण का चक्र टूट जाता है। इसीलिए गुरु और परमात्मा अलग होते हुए भी एक हैं। ❑

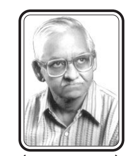

(1936-2009)

दिव्य लोक

✍ डॉ० शम्भू नाथ

यह सृष्टि तीन भागों में बंटी है: एक भाग वह है: जिसे मन इन्द्रियों के माध्यम से अनुभव करने में सक्षम है। इस भाग को इन्द्रलोक या अपराप्रकृति कहते हैं। हर मनुष्य के पास एक मन है, बुद्धि है: और ये दोनों इन्द्रियों द्वारा महसूस नहीं होते। उसके आन्तिरक जगत में कुछ पुर्जे काम करते हैं; और जब तक ये क्रियाशील हैं; तभी तक हमारे शरीर के अंग ठीक काम करते हैं। लेकिन इन पुर्जों की अनुभूति भी वह इन्द्रियों द्वारा नहीं कर पाता। इस तरह से हर मनुष्य में एक विश्वास जागृत होता है: कि इन्द्रियों से परे भी एक जगत है। ये दोनों जगत (इन्द्रिय जगत और पराजगत): बदलने वाले जगत हैं।

इन बदलने वाले दोनों जगतों का आधार, ''परा से पराजगत'' है, जो निर्गुण-निराकार है और सृष्टि के समस्त अस्तित्व का भी आधार है।

आज के समाज के ज्यादातर व्यक्ति इन्द्रिय जगत के साथ-साथ एक दिव्य जगत में विश्वास रखते हैं। इस दिव्य जगत की शक्ति को ही

ईश्वरीय शक्ति मानते हैं। तरह-तरह के देवी-देवताओं के पूजन में व्यस्त रहते हैं। कुछ लोग कुछ क्रियाओं और वस्तुओं की मदद से तरह-तरह के यज्ञों द्वारा भी इस देवलोक की शक्ति को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। लेखक यह बताना चाहता है कि

'पराजगत' और 'परा से पराजगत', ही दिव्यलोक हैं और यहीं सारे देवताओं का वास है।

''परा से पराजगत,'' सूक्ष्म जगत है। अर्थात् इस जगत में मात्र इन्द्रियों से अनुभव न होने वाली शक्तियां हैं। अत: इनमें इन्द्रियों द्वारा अनुभव होने वाली वस्तुओं का तो सवाल ही नहीं उठता। यही इस बात का प्रमाण है: कि दिव्यलोक के देवतागण; मात्र प्रकृति की शक्ति के रुप में हैं और प्राकृतिक नियमों के रुप में हर क्षण क्रियाशील रहते हैं। ''ध्यान'' (Meditation) के अभ्यास द्वारा हम इस जगत से सम्पर्क स्थापित करते हैं। इस पूरे जगत की सामूहिक चेतना 'स्वयं' है। जब ध्यान के पश्चात मन क्रियाओं के जगत में वापस आता है: तब हमारे ''मैं'' को ''स्वयं'' का कुछ ज्ञान हो जाता है। और अभ्यास द्वारा करोड़ों बार आन्तरिक जगत में सम्पर्क स्थापित करके, क्रिया के क्षेत्र में वापस आकर क्रिया करने से; ''मैं'' दिव्य शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करने लगता है। समस्त देवगण हमारे ''मैं'' से सामंजस्य स्थापित करने लगते हैं और धीरे-धीरे हमारे प्रिय भोगों को बिना मांगे हमें देने लगते हैं।

दिव्य जगत की अनुभूति : सम्भव

हमारे प्रिय भोग मात्र हमारी इच्छाओं के रुप में रहते हैं। इन इच्छाओं की पूर्ति ही प्रिय भोगों को पाना है। हमारे प्रिय भोग इन्द्रियसुख के रुप में भी हो सकते हैं और ब्रह्म सुख के रुप में भी हो सकते हैं। इन्द्रियसुख के भोग बिना स्थूल पदार्थों के संभव नहीं हैं। लेकिन पराजगत में स्थूल पदार्थों की सम्भावना नहीं है। शक्तियों की सूक्ष्मता भी इतनी है: कि

स्पर्श इन्द्रिय भी उसे महसूस करने में मदद नहीं करतीं। कहने का अर्थ यह है कि इन्द्रिय जगत की ठंडक और गर्मी जैसी सूक्ष्म शक्तियों को महसूस करने में: स्पर्श इन्द्रिय मदद करती है। लेकिन पराजगत या दिव्यजगत की शक्ति को महसूस करने में: स्पर्श इन्द्रिय भी मदद नहीं करती।

जो व्यक्ति मात्र घोर निद्रा, स्वप्न और जागृत: तीन अवस्थाओं में रहते हैं, उनका मन इन दिव्य शक्तियों को महसूस करने योग्य नहीं है। लगभग 15 से 20 साल तक ''ध्यान'' (मैडिटेशन) के अभ्यास के बाद मन में ब्रह्मतत्व पिरोकर, दिव्य शक्तियों को अनुभव करने वाली शक्ति मन में पैदा कर सकते हैं।

इस तरह से यह प्रमाणित होता है कि दिव्य शक्तियों को अनुभव करने की शक्ति भी मन को दिव्यशक्ति ही प्रदान करती है। अन्यथा स्वयं मन भी दिव्यशक्ति को अनुभव नहीं कर पाता। मन मात्र दिव्य शक्ति की मदद से ही दिव्यजगत को अनुभव करने की शक्ति प्राप्त करता है। जब यह शक्ति मन को प्राप्त हो जाती है: उस समय मन एक विशेष सुख में लीन रहने लगता है: जिसे 'पराजगत का सुख' या 'ब्रह्मसुख' कहते हैं। यह ब्रह्म सुख ही हमारे सारे प्रिय भोगों को हमें देगा; जो कि हमारी इच्छाओं के रुप में हमारे मन में हैं। यदि ये सुख इन्द्रियसुख के रुप में हैं और सुख के भोग के लिए स्थूल पदार्थ आवश्यक हैं: तो स्थूल जगत के सारे स्थूल पदार्थ भी ये ब्रह्मसुख ही प्रदान करेंगे।

ब्रह्मसुख की चरम सीमा आने पर : इच्छाओं की पूर्ति तत्काल

ब्रह्मसुख मात्र शक्ति (एनर्जी) के रुप में ही है। इस शक्ति की उत्पत्ति दिव्यशक्ति के मन में पिरोने से होगी। इस सृष्टि में केवल यही एक

शक्ति है: जो इच्छाओं के सम्पर्क में आते ही इच्छाओं की पूर्ति हेतु पदार्थ (Matter) में भी बदल जाएगी। इस एनर्जी को Matter में बदलने की प्रक्रिया दिव्यशक्ति की देन है। प्रकृति स्थूल जगत में भी प्राकृतिक-शक्ति को Matter में बदलने में सक्षम है। स्थूल जगत की इन प्रक्रियाओं को हम इन्द्रियों की मदद से भी अनुभव करते हैं।

उदाहरण के लिए एक बीज जमीन में डालते हैं। बीज अंकुरित हो जाता है। जड़ें खाद, पानी से एक 'सेप' (Sap) की उत्पत्ति करती हैं। यह सेप पदार्थ नहीं, केवल एनर्जी (शक्ति) है और यह पूरे पेड़ को बनाने में सक्षम है। यह सेप तना, डाली, पत्ती, फूल, फल और फलों में बीज प्रदान करती है।

हम आसानी से अनुभव कर सकते हैं: कि प्रकृति की शक्ति, किस प्रक्रिया द्वारा शक्ति से ''मैटर'' में बदल जाती है। यह सिद्धांत (Theory) प्रकृति का है। इसलिए एनर्जी को ''मैटर'' में बदलने की प्रक्रिया इन्द्रियजगत और पराजगत में एक ही रहेगी।

दिव्यलोक, ब्रह्मलोक या पराजगत की जमीन, ''मन'' है। हमारी इच्छाएं इस जमीन के बीज हैं। दिव्यशक्ति जोकि प्रयासहीनता (मैडिटेशन) के अभ्यास द्वारा मन में पिरो जाती है: पिरोने के पश्चात् मनुष्य उसे ''ब्रह्मसुख'' (Bliss) के रुप में अनुभव करता है। जितना ब्रह्मसुख अनुभव होता है: मात्र उसी अनुपात में यह ब्रह्मसुख कुछ इच्छाओं की पूर्ति कर देगा। यदि मनुष्य इस अभ्यास द्वारा ऐसी अवस्था तक पहुंच जाए: कि वह हर समय ब्रह्मसुख की चरम सीमा में लीन रहने लगे; तो वह निश्चय ही अपनी समस्त इच्छाओं को तत्काल पूरी करने में सक्षम हो जाएगा। यदि इच्छाओं की पूर्ति में कुछ पदार्थों की आवश्यकता है: तो ब्रह्मसुख मात्र इच्छाओं के सम्पर्क में आने पर ऊपर बतायी गयी प्रक्रिया के माध्यम से पदार्थ में बदल जाएगा। इच्छाओं की पूर्ति उपरोक्त प्रक्रिया द्वारा ब्रह्मसुख की

तीव्रता बढ़ाने के साथ-साथ और कम समय में होने लगती है। अत: **ब्रह्मसुख की चरम सीमा आने पर इच्छाओं की पूर्ति तत्काल हो जाती है।** हमारे आध्यात्म के इतिहास में ऐसी कई घटनाएं मिलती हैं। उदाहरण के लिए :-

(1) कृष्ण जो कि अवतार थे, के मित्र सुदामा उनसे मिलने गए। जब वहां से लौटे तब उन्होंने देखा कि उनकी कुटिया की जगह एक बहुत बड़ा महल खड़ा था, जिसे पहचानने में वे स्वयं सफल नहीं थे।

(2) एक बार विश्वामित्र ने एक ब्राह्मण को राजा हरीशचन्द्र और उनकी पत्नी के साथ अपना कर्ज वसूलने हेतु लगा दिया। एक दिन जब उनकी पत्नी जंगल में थी, हरिशचन्द्र की अनुपस्थिति में वह ब्राह्मण तेज भूख लगने का नाटक करने लगा और धमकी दी कि यदि भूख से उसकी मृत्यु हो गयी, तो ब्रह्म हत्या का पाप हरिशचन्द्र की पत्नी को लगेगा। तब उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की: कि वे उन्हें इस संकट से उबारें। फलस्वरूप पेड़ जिस में एक भी फल नहीं था: वह तत्काल फलों से लद गया।

(3) रामायण पढ़ने वाले कुछ साधकों का कहना है कि जिस समय राम और लक्षमण सीता की वाटिका में पधारे, बाग में सारे फूल और फल तत्काल पेड़ों पर लद गए। ये उदाहरण आध्यात्मिक इतिहास के हैं।

(4) लेकिन इस कलियुग में भी, आज के महर्षि महेश योगी के गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के विषय में यही कहा जाता है: कि उनसे जब भी कुछ मांगा जाता था, वे एक तकिये के नीचे हाथ डालकर जब हाथ बाहर लाते थे, तब वह वस्तु उनके हाथ में ही होती थी।

(5) शिरडी के सांई बाबा द्वारा पानी को तेल में बदलकर चिराग जला देने की बातें भी उपरोक्त आध्यात्मिक घटनाओं जैसी पुरानी नहीं। इसलिए इन पर आसानी से विश्वास किया जाता है।

प्रकृति में सामंजस्य की शक्ति

ब्रह्मसुख पराजगत की एक एनर्जी है: जो इच्छाओं के सम्पर्क में आने के बाद स्थूल पदार्थों में भी बदल सकती है। ऐसा उसी प्रक्रिया द्वारा होता है: जिस प्रक्रिया पर मृत्युलोक का पूरा वनस्पति जगत आधारित है। प्रश्न यह उठता है: कि वह कौन सी शक्ति है, जो स्वयं बिना किसी इच्छा की मदद के, जो रुप चाहे धारण कर ले?

''पराजगत'' और ''परा से पराजगत'', दोनों को दिव्य जगत कहा गया है। लेकिन यहां उपरोक्त सिद्धांत समझने के लिए आवश्यक है, कि हम ''परा से पराजगत'' की शक्ति मन में पिरोने से पहले और पिरोने के बाद, उसे अलग-अलग नाम दें।

इस तरह हम देखते हैं कि पराजगत में दो शक्तियां हैं :-

(1) एक दिव्य शक्ति और (2) दूसरी ब्रह्मशक्ति

दोनों में अन्तर यह है: कि जब दिव्यशक्ति मन में पिरोती है, तब मन में ब्रह्मसुख की उतपत्ति होती है और मन में चेतना या परा शक्तियों को अनुभव करने की शक्ति प्रदान होती है। यही ब्रह्मसुख इच्छाओं के सम्पर्क में आकर पदार्थों में बदलने की शक्ति रखता है। लेकिन दिव्य शक्ति को कोई भी रुप धारण करने के लिए: न तो मन जैसी किसी जड़ की आवश्यकता होती है और न किसी इच्छा के सम्पर्क में आने की आवश्यकता होती है।

इच्छाएं तो मनुष्य की संचित कर्मों की देन हैं। इसलिए ये इच्छाएं साधना द्वारा अपने को ब्रह्मस्वरूप बनाने वाले साधकों में तो रहती हैं; लेकिन उस दिव्य शक्ति में तो इसकी सम्भावना ही नहीं, जिसने कभी मनुष्य का रुप ही धारण नहीं किया। यह दिव्य शक्ति प्रकृति को हमेशा बैलेन्स (Balance)

में रखने वाली शक्ति है। दूसरे शब्दों में कभी प्रलय न होने देने वाली शक्ति है। अर्थात् मात्र हर तरह का प्रलय रोकने के लिए जिस तरह के रुप की आवश्यकता प्रकृति को होगी: यह दिव्य शक्ति समय-समय पर अलग-अलग रुपों में प्रकट होती रही है और होती रहेगी।

यदि कभी रावण या कंस जैसा राक्षस, किसी कारणवश, मनुष्य के रुप में पृथ्वी पर आ जाता है: तो पृथ्वी को बैलेन्स करने के लिए राम और कृष्ण जैसा कोई अवतार भी हो जाएगा। शिव पुराण और विष्णु पुराण में शिव और विष्णु अवतार इसी दिव्यशक्ति की देन हैं। जब दिव्यशक्ति ऐसा कोई रुप धारण करती है, तब उस रुप का पूर्ण विकास होने के बाद: उस रुप में बदलाव आना बन्द हो जाता है।

सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग-एक युगों का चक्र है। यह चक्र तो तभी टूटेगा जब पूर्ण प्रलय हो जाएगा। इसलिए यह समझना आसान है: कि पृथ्वी के किसी भाग में प्रलय अवश्य आ जाए। लेकिन यदि पूर्ण प्रलय हो गया: फिर तो ब्रह्मा को सृष्टि ही फिर से रचनी पड़ेगी। प्रकृति ऐसा कदापि नहीं चाहेगी। यही हमें बताता है कि **प्रकृति में एक सामंजस्य की शक्ति** अति आवश्यक है: जिससे अनन्त द्वारा बनायी हुई सृष्टि अनन्तकाल तक चलती रहे।

इसलिए दिव्यशक्ति: बिना किसी मन और मन में संचित कर्मों की मदद के रुप धारण करने की शक्ति अपने में रखती है। दूसरे शब्दों में इस शक्ति का रहना अनिवार्य है। इसलिए आध्यात्मिक इतिहास भी यही बताता है: कि सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के अनन्त चक्र होते रहेंगे। ❑

''मनवा ध्यान करते रहना''

✍ श्री अमरनाथ 'हंस' (90343-34644)

''मनवा ध्यान करते रहना, मनवा ध्यान करते रहना''
स्वत: सुख आनन्द मिलेगा, ब्रह्म तत्व अखण्ड मिलेगा।
पाएगा सुख चैना, मनवा ध्यान करते रहना॥
''मनवा ध्यान करते रहना, मनवा ध्यान करते रहना''

स्वत: जीने की कला है आती, स्वयं क्या परिवार जन सुखाती।
डा० शम्भू नाथ जी का कहना, मनवा ध्यान करते रहना॥
''मनवा ध्यान करते रहना, मनवा ध्यान करते रहना''

निष्कासत करो थकावट बिन शर्तें, हल्की हों पुरानी पर्तें।
ब्रह्मज्ञान का पूरा हो सपना, महर्षि महेश योगी का कहना॥
''मनवा ध्यान करते रहना, मनवा ध्यान करते रहना''

हम अपने व्यक्तित्व को लगातार बाहर से जीते रहते हैं: भीतर की सफाई का मतलब ही नहीं समझते। शास्त्रों में लिखा है: कि पवित्रता में ही प्रसन्नता बसती है; दु:खी कोई भी नहीं रहना चाहता। सभी लोग प्रसन्न रहने के लिए प्रयास रत रहते हैं।

''ध्यान'' से जीवन में जीने की कला स्वत: आती है और यह कला चारों तरफ फैले वातावरण को भी शुद्ध कर देती है।

मेरी निजी तमन्ना है कि डा० शम्भू नाथ जी का ''ध्यान'' रूपी सन्देश केवल इस देश में ही नहीं, बल्कि पूरे संसार में अमृत प्रसाद की तरह घर-घर एवं जन-जन के हृदय में इस तरह सम्माहित हो: कि सारा विश्व ध्यान-मग्न हो जाए।

''योगस्थ: कुरू कर्माणि'' (4.48) योग में स्थित हो कर: कर्तव्य कर्मों को करें। इसी आधार पर इस 'ध्यान योग' द्वारा उतपन्न ब्रह्म शक्ति से सारा संसार ऐसे प्रफुल्लित हो जाए कि हमारे देश के ही नहीं: अपितु विश्व में राम-राज जैसा वातावरण प्रवहित हो जाएगा। ❑

निर्योग क्षेम का रहस्य

✍ महर्षि श्री महेश योगी

निर्योग क्षेम का बड़ा रहस्य है-निर्योग क्षेम का अर्थ है-तुमको योग क्षेम नहीं करना पड़ेगा। जैसे भावातीत हो जाओगे-आत्मानन्द का अनुभव हो जायेगा: तब तुमको काम नहीं करना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि जिस समय मन निस्त्रैगुण्य होता है-धर्म सत्ता से जुटता है, तब प्रकृति के जितने नियम सृष्टि और सृष्टि के विकास में लगे हुए हैं: वे सब उसी सत्ता के आधार पर काम कर रहे हैं।

जैसे 'रस' है, इस रस से पत्ता, फल, फूल, डाली बनाने वाले जितने नियम हैं: वे सभी उसी रस के स्तर पर काम कर रहे हैं।

तो जो धर्म सत्ता सारे विश्व ब्रह्माण्ड को धारण किये हुए हैं-जितने प्रकृति के नियम सृष्टि और सृष्टि के विकास में संलग्न हैं: वे सब उसी सत्ता के स्तर पर काम कर रहे हैं।

तो क्या होगा?

जब मन उस सत्ता से सत्तावान् हो जायेगा: तो फिर सारे प्रकृति के नियम उसके सहयोगी हो जायेंगे। फिर उसकी एक इच्छा सारी सृष्टि की इच्छा होगी-योग क्षेम के लिए उसको कुछ करना नहीं पड़ेगा। उसका सब काम प्रकृति पोषित होगा।

जब व्यक्ति का जीवन उस समष्टि प्रकृति से पोषित होता है: तब उसका योग-क्षेत्र भगवान् धारण करते हैं।

''**योग क्षेमं वहाम्यम्**'' **(9.22)** इसका अर्थ है: कि जब मेरे से सम्बन्ध हो गया। उनकी जो आवश्यकताएं होती हैं, उन्हें मैं पूरा करता हूं और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूं।

> **तब जैसे एक गरीब लड़के को किसी धनी ने गोद ले लिया तो वह केवल पढ़ता है और मौज करता है। उसका सारा काम अपने आप हो जाता है। उसे अपने लिये कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती।**

जब मन भावातीत सत्ता से-प्रकृति के मूल आधार से-समस्त विश्व ब्रह्माण्ड के संचालन के आधार से सम्बन्धित हो गया: तो बस वह सर्वशक्तिमान प्रकृति स्वत: स्वाभाविक रूप से सब कुछ उसके लिये किया करती है-इसीलिये ''**निर्योगक्षेम**'' (आवश्यकताओं के आश्रय नहीं होना पड़ेगा) कहा।

फिर भगवान कहते हैं-तुम आत्मवान हो जाओगे। आत्मा तो सभी में है ही: फिर क्यों कहा ''आत्मावान हो जाओगे''? आत्मा सबके भीतर होते हुए भी उसकी सच्चिदानन्दमयिता का जो अनुभव नहीं होता; वह अनुभव होने लगेगा।

> **खजाना भरा है: परन्तु यदि काम में नहीं आ रहा, तो गरीब का गरीब रहता है। तब कहते हैं: कि यदि खजाने का पता लग जायेगा तो तुम गरीब नहीं रह जाओगे-**

आत्मावान् हो जाओगे-सच्चिदानन्दवान् हो जाओगे। सच्चिदानन्द आत्मा तुम्हारी अवश्य है: परन्तु तुमने उस पर अधिकार नहीं किया। तुम्हारे लिये वह नहीं के बराबर है। अब जब ''**निस्त्रैगुण्यो भव**'' (2.45) प्रकृति के सत्तव, रजो तथा तमो तीनों गुणों से ऊपर उठो कह दिया-भावातीत हो जाओ तो फिर सन्देह होता है: कि यह व्यावहारिक जीवन तो त्रिगुणात्मक है और त्रिगुणातीत होने से व्यावहारिक जीवन का क्या होगा? सब

समाप्त हो जायेगा। जब वह त्रिगुणातीत सत्ता हो जायेगी-व्यापक हो जायेगी-व्यक्ति की सत्ता नष्ट हो जायेगी। यदि बाहर का सब शून्य हो गया तब फिर क्या होगा? इसके बाद भगवान कहते हैं-

''**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**'' (2.47) तुम्हें अपना कर्म (कर्त्तव्य) करने का अधिकार है, किन्तु कर्म के फलों के तुम अधिकारी नहीं हो।

एक उपदेश सारी व्यावहारिक सत्ता को समाप्त करके पारमार्थिक सत्ता का उदय हुआ और दूसरा यह कि ''तुम्हारा कर्म में ही अधिकार है।'' व्यावहारिक क्षेत्र में आओ तो तुम्हारा कर्म में अधिकार होगा। फल प्रकृति के अधिकार में है। जैसा कर्म करोगे वैसा फल होगा। फल प्राप्ति अपने हाथ में नहीं है। आम का पेड़ लगा कर नींबू का फल नहीं तोड़ सकते। इसीलिए कहते हैं कि फल प्राप्ति की चिन्ता क्यों करते हो? जैसा काम करोगे, वैसा फल मिलेगा। इसलिए तुम्हारा जो अधिकार है, वह करो-यहां अधिकार का निरुपण किया है।

एक बार उपदेश हुआ ''निस्त्रैगुण्यो भव'' (2.45) प्रकृति के तीनो गुणों से परे होओ। त्रिगुणातीत (सच्चिदानन्द) हो जाओ। दूसरी बार उपदेश हुआ ''त्रिगुणात्मक (सत्, चित्त और आनन्द के) क्षेत्र में विहरण करो'' योग में स्थित होकर कर्म करो। पहले जो कहा था।

''**निस्त्रैगुण्यो भव**''-वह योगस्थ की स्थिति बतायी थी। अभी जो कहा कि तुम्हारा कर्म करने का अधिकार है''**कुरु कर्माणि**'' कर्म करो। वह त्रिगुणात्मक क्षेत्र में विकर्म की स्थिति बतायी। कहते हैं :-

''**त्रिगुणातीत के क्षेत्र में रहते हुए त्रिगुणात्मक क्षेत्र में व्यवहार करो**''। यह भगवदगीता जो दोनों पूर्णताओं-सगुण साकार और निर्गुण निराकार: दोनों को एक साथ सम्भव कर देता है। यह जीवन का गीत है। जीवन के दोनों पहलू इस गीत में निखरे हैं। दोनों पहलू की बात यह है-

''**योगस्थः कुरु कर्माणिः**'' योग में स्थित होकर-व्यवहार और परमार्थ दोनों को लिए रहो। शाम-सबेरे ध्यान करो और दिन भर काम करो।

क्या होगा? इसके आगे सारा कर्म का रहस्य, सारा भक्ति का रहस्य, सारा ज्ञान का रहस्य है। परन्तु मूल में है:

''निस्त्रैगुण्यो भव'' फिर ''योगस्थः कुरु कर्माणि'' (2.45, 2.48): सामान्य मानव-क्षेत्र के कर्म व्यावहारिक क्षेत्र के कर्म हैं। और फिर इन कर्मों को और उत्तमोत्तम बनाकर जो चिन्मय दैवी सत्ता-विशुद्ध सत्त्व का क्षेत्र है: उसके साथ कर्म करो। मानवीय व्यवहार का क्षेत्र और फिर दैवी व्यवहार का क्षेत्र-उसके लिए भक्ति का उपदेश और फिर वह पूर्ण ज्ञान का उपदेश: जिसमें दिव्य दैवी चिन्मय सत्ता, जो विशुद्ध सत्त्व चेतन की है और भावातीत की सत्ता दोनों का सम्बनघ हो जाये। इसकी अजरता, अमरता: इसकी नश्वरता के साथ आ जाये। इसकी क्षणभंगुरता: इसकी नित्यता बन जाये। यह उपदेश का क्रम है।

सबसे मौलिक बात उस अव्यक्त चेतना की है: जिसका व्यवहार में होने पर भी परिचय नहीं है। उसका परिचय प्राप्त करने के लिए''**निस्त्रैगुण्यो भव**'' और फिर ऐसा होकर करम करेंगे। अब जो काम करेंगे: वह अनन्त शक्ति से समन्वित होकर करेंगे। तो यह होगा कि थोड़ा करेंगे, बहुत हो जायेगा। यह योग है, जो कर्म में कुशलता देता है-

''**योगः कर्मसु कौशलम्**'' (2.50) भावातीत योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है। केवल कर्म-बन्धन से मुक्त हो जायें, यह कर्म की कुशलता नहीं है। कर्म की कुशलता का एक पहलू यह है तो अवश्य ही कर्म करते: कर्म का फल भोगते समय स्वयं अलग रहते हैं। परन्तु इसके साथ कर्म की कुशलता में यह भी है: कि थोड़ा करें और बहुत हो जाये।

व्यवहारी जीवन के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह धर्म सत्ता जो सभी का आधार है: उससे सम्बन्धित होने पर सम्पूर्ण प्रकृति के नियम उसी स्तर पर काम करते हैं और सारी प्रकृति अपने अनुकूल हो जाती है।

तब अपनी समझ में थोड़ा करते हैं, व्यष्टि-सत्ता को लेकर-व्यक्तिगत जीवन के विचार से, लेकिन वह सर्व-शक्तिमती प्रकृति से पोषित होता है। इसलिए थोड़ा करें और बहुत हो जाय। यह कला योग की है। तीर को खींचते हैं: 6 इंच, तो चला जाता है दो फर्लांग-यह कला है।

तीर के खींचने में एक और कला क्या है? देखते तो हैं कि थोड़ा खींचा तो उतना परिश्रम हुआ, लेकिन छोड़ने में जरा भी परिश्रम नहीं पड़ता, बल्कि तीर को पकड़े रहने में जो परिश्रम होता है, उसी को छोड़ते हैं। वह परिश्रम छोड़ा तो तीर अपने आप बहुत दूर चला गया। अर्थात् तीर को फेंकने में परिश्रम तो पड़ा नहीं, लेकिन न फेंकने में जो परिश्रम पड़ रहा था: वह भी बच गया- यह कर्मयोग है। कर्म की कला है कि काम न करने में हमको जो परिश्रम पड़ रहा था: वह परिश्रम हम छोड़ दें तो काम इतना शक्तिशाली हो जायेगा कि बिना किये हो जायेगा-यही कर्म करने की युक्ति है।

जबसे हम लोग ऐसा करना भूल गये-न करने में जो परिश्रम पड़ रहा है: उसे दूर करने का ज्ञान नहीं रहा। तब से बहुत करते हैं, लेकिन कुछ नहीं होता। बहुत सोचते हैं, पर कुछ नहीं होता।

थकान ही महसूस होती है। इसलिए कि वह कला हम नहीं जानते: जिससे योग होता है। ''**योगः कर्मसु कौशलम्**''। योग में ही कर्म की शाखा का रूप है। यद्यपि जाते हैं, निष्कर्म के क्षेत्र में-बिल्कुल कर्म के क्षेत्र से अलग हो जाते हैं। परन्तु कर्म के क्षेत्र से अलग होना ही कर्म में सफलता का लक्षण है। अत: जब से इस विद्या को भूले: तब से कर्म में

कुशलता नहीं प्राप्त होती। बहुत करते हैं: कुछ नहीं होता, परेशानी बढ़ती जाती है। उधर काम भी नहीं होता, इधर कर्म के बन्धन और बढ़ते जाते हैं। यही कमजोरी का लक्षण है। जब हम कमजोर रहेंगे, तब काम भी नहीं होगा-ऐसी स्थिति में यदि हम कार्य करेंगे: तो व्यावहारिक और पारमार्थिक हानि होगी।

इतना उपदेश देने के लिए भगवान् आये थे। यह पूर्ण परब्रह्म परमात्मा का उपदेश था। छोटा-मोटा उपदेश तो बहुत लोग देते हैं। लेकिन यह उपदेश है कि यदि हम कार्य न करें तो न करने में जो परिश्रम हो, उसे भी हम हटा दें तो सारे के सारे कर्म स्वयं हो जायेंगे। ❑

''सौ टका पक्की बात''

✍ **श्रीमती ऊषा गर्ग (01662-246415)**

जीवन एक उत्सव है। जीवन एक गीत है एवं जीवन एक संगीत है। ऐसे जियो कि जीवन चमक उठे। और मरो तो ऐसे मरो कि मौत महक उठे।

यह कैसे सम्भव हो सकता है? हो सकता है! केवल छोटे से अभ्यास से। नित्य का 3 बार 30-30 मिनट का ध्यान। ध्यान भी क्या? पूरा आराम (Relax)। अक्सर कहा जाता है: कि जीवन से दुख मिटाना हो तो ध्यान करें। जब हम किसी व्यक्ति को ध्यान में बैठे देखते हैं: तो कहा जाता है कि वह कुछ नहीं कर रहा है। ध्यान का अर्थ है: कि कुछ नहीं करना। जो कुछ हो रहा है: उसमें मैं एक माध्यम हूं। इसका अर्थ हुआ; कुछ नहीं हो रहा: ऐसा न समझो। संसार में सुख पाने के लिए जितने काम करते हैं: जरूरी नहीं कि परिणाम में सब सुख मिलें। लेकिन यह बात पक्की हुई: सुख पाने के लिए सब कुछ करना पड़ेगा। इसमें भाव भी आता: मैं कर रहा हूं। इसी सुख में दु:ख मिलने लगता है। फिर दुख मिलने के लिए मैं कुछ कर रहा हूं; का भाव आएगा। बस इस 'मैं' (Ego) के विसर्जन के

लिए अध्यात्म में 'ध्यान' की प्रक्रिया बनाई है।

'मैं' (Ego) हटा: कर्ताभाव गिरा। फिर व्यक्ति, भगवान से जुड़ जाता है। भगवान् से जुड़ने पर कोई भी काम करे: परिणाम में सुख आने लगेगा। ध्यान से हृदय शुद्ध हो जाएगा। ध्यान होने पर ध्यान साधना तेजी से आगे बढ़ती है। परन्तु मनुष्य गल्ती वह कर बैठता है: कि भीतर का सुख जगाने के बदले बाहर का सुख चाहता है। लेकिन सुख लेने की नहीं: देने की चीज़ है। यह कला आदमी में भरी है। उसे प्रगट करने की कला ध्यान में है। जब हम सुख देने आरम्भ करेंगे: तो हमें अपने आप सुख मिलने आरम्भ हो जाएंगे।

भगवान् हर प्राणी में है। जो उसको ध्यान (Meditation) द्वारा प्रगट कर लेता है: वह आनन्द सुख, प्रसन्नता: यानि कि भगवान् के सब गुण उसमें आ जाते हैं। वह सम्पन्न हो जाता है।

रविन्द्र नाथ टैगोर के समय की बात। एक करोड़पति सज्जन साधारण वेश में आते। कारण पूछा तो उन्होंने कहा: मैं समझता हूं कि यह बाहर का श्रृंगार है। और धन वास्तविक नहीं: व्यक्ति को जिस धन से आत्मधन न मिले: उस धन का गर्व करना मूर्खता है, यह कब चला जाए? परलोक में इसका प्रयोग नहीं। धन को संभालते-संभालते जो संभालने योग्य है: उसको न संभाला: तो कितनी नादानी है? ज्ञान के आगे, भक्ति के आगे; ध्यान के आगे और भगवान् के आगे: कुछ भी मूल्यवान नहीं है।

सुखमनी साहिब की एक लाईन है, जिसमें लिखा है: कि जिसके गले में एक पथ्थर हो: वो पानी के पार नहीं जा सकता। और जिसके साथ पांच पथ्थर (लोभ, मोह, अहंकार, काम एवं क्रोध): उनका पार कैसे संभव है? संत ध्यान पर जोर देते हैं: यह तो जड़ को पानी देना है। शेष पत्तों को गीला करना है। नियम से ध्यान करने से अन्त:करण कभी कमजोर नहीं होगा। **जो माता-पिता बच्चों का भविष्य उन्नत देखना चाहते हैं: वे**

आरम्भ से ही उन्हें ध्यान (Meditation) सिखाएं। ध्यान करते-करते अगर कोई छोटा दुख आता है: दुखी न होओ; दुख स्वयं खत्म हो जाएगा।

हमेशा प्रसन्न रहो और अच्छा बोलो: न जाने कब चलना पड़े ? मनुष्य जीवन प्रभु को पाने के लिए मिला है। कमाई करो और धर्म करो। मनुष्य जीवन में भगवान को प्रगट करो और मुक्त हो जाओ। संसार में सुखी होने की इच्छा को छोड़कर: आत्मा में शान्ति पाओ। संसार के सुख मुफत में मिलेंगे। स्वार्थ छोड़कर परमार्थ में लगो। जागृत अवस्था के सारे सुख, जब कट जाते हैं: तो गहरी निद्रा में पहुंचते हैं। कितना आराम मिलता है? ऐसे ही जागृत अवस्था में बैठने का यदि अभ्यास बना लें: तो मनुष्य जीवन सफल हो जाएगा। कोई शक ही नही ? यह बात सौ टका सच है।

धन जितना कम होग: उतनी शान्ति बढ़ेगी। भीतर में लोभ होगा: तो न दानी को शान्ति मिलेगी और न निर्धन को शान्ति मिलेगी। ❑

'ध्यान योग' के लाभ

✍ श्री विजय कुमार अग्रवाल

जब अन्त:करण शुद्ध हो जाता है: तब व्यकित किसी संस्कार या विशेष विचारधारा से निर्देशित नहीं होता है, बल्कि भगवान की शक्ति एवं प्रभु की इच्छा से निर्देशित होता है। इसे अन्तर्ज्ञान (Intution) कहते हैं। क्योंकि जहां भगवान की शक्ति काम करती है अथवा कराती है: वहां सुख के अलावा कुछ और हो ही नहीं सकता है। जिसमें उसके जीवन का प्रत्येक पहलू सुख से भरता जाता है।

इस प्रकार ध्यान-योग पर बैठने से प्रभु की शक्ति से जितना मिलन होता है: उतना ही हमारा आत्म-बल भी बढ़ जाता है। अत: हम जो भी कार्य: चाहे वह कितना भी बड़ा से बड़ा क्यों न हो; सफल होता है। उसको ताकत भी साथ-साथ प्रभु से मिलती जाती है, जिससे जीवन में

'होने' की शक्ति बढ़ती जाती है। जिस अनुपात में मन की शक्ति बढ़ती जाती है: उसी अनुपात में जीवन स्वचलित (Automatic) होने लगता है। अर्थात् जीवन प्रयासरहित और उत्तेजनारहित होने लगता है।

ध्यान-योग से संसार के कार्य को सुचारू रूप से करने की असीम शक्ति प्राप्त होती है: जिससे सही विधि से ध्यान-योग में लग्न, व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में, सफलता उसके चरण चूमती है। राम अथवा भगवान (प्रभु) का तात्पर्य आत्मिक शक्ति से है। जो व्यक्ति इस आत्मिक शक्ति को जितना उभार लेगा: उसके जीवन में उतनी ही भगवान की शक्ति प्रकट हो जायेगी। और उसका जीवन उतना ही सुखमय हो जायेगा। जिस अनुपात से प्रभु की शक्ति ऊपर उभर आती है: उसी अनुपात में उभरा हुआ सत्: मन पर पड़े हुए तम और रज को काटता है। जिससे व्यक्ति की मनोवृत्ति शुद्ध होती चली जाती है।

> **साथ ही साथ वह उभरा हुआ सत्: उस व्यक्ति के अन्दर और बाहर के वातावरण में फैले तम और रज को काटता है। जिससे उसके चारों ओर का वातावरण धीरे-धीरे सत् में बदलता जाता है।**

जिससे उसके पारिवारिक जीवन एवं सामाजिक जीवन में समन्वय सौहार्द पूर्ण एवं प्रेम-पूर्ण वातावरण होता जाता है। यह सत् उसके जीवन को प्रत्येक प्रकार से अन्दर एवं बाहर, सब तरफ से सुखी बनाता है। जैसा कि रामायण में लिखा है-

> **''राम नाम मनि दीप, धरू जीह देहरी द्वारा।**
> **तुलसी भीतर बाहिरहु, जो चाहसि उजियार॥''**

ध्यान-योग अन्दर से कुछ भी उभार सकता है। जैसे-आलस्य, निद्रा गैस, तेजाब, मल, भय, चिन्ता आदि घबराहट के चिन्ह तथा शरीर भी सुन्न-सा या ऊपर उठता हुआ आदि का आभास हो सकता है; जैसा कि

अकसर स्वप्न में भी होता है। अत: ध्यान के समय किसी भी उभार से घबराना नहीं चाहिए।

क्योंकि ध्यान के समय अन्दर प्रकृति पूरी शक्ति से सफाई का कार्य करती है। वह आपके शरीर, मन एवं बुद्धि को हर प्रकार से निर्मल करती है। वह यह कार्य प्रतिक्षण करती है। क्योंकि निरन्तर सफाई के क्रम में लगे रहना उसका स्वभाव है। अत: सफाई के दौरान: गर्द से घबराना नहीं चाहिए।

लेकिन जब ध्यान-योग के समय प्रकृति को सफाई का पूरा अवसर अर्थात् स्वतन्त्रता प्राप्त होती है: तब वह पूरी शक्ति से समाये हुए संस्कारों को विचारों के रूप में निकाल कर सफाई करती है। इसमें घबराने अथवा परेशान होने की कोई बात नहीं है। यह सफाई हर दृष्टिकोण से आपके अच्छे के लिए होती है।

भगवान स्वयं चाहता है कि उसकी शक्ति अन्दर से बाहर आवे। यह कार्य निष्काम-कर्म के माध्यम से मनुष्य योनि ही कर सकती है।

निष्काम-कर्म (Meditation) का अर्थ है कि उत्तेजनारहित विचार: उत्तेजना जिसे हम मन का भागना कहते हैं।

जिस समय हम ध्यान पर बैठते हैं: उस समय निकलते हुए संस्कारों की वजह से अन्दर भरी हुई उत्तेजनाएं भी निकल जाती हैं। और धीरे-धीरे जो विचार मन में आते हैं, उनमें उत्तेजनाएं कम होती जाती हैं। जिस अनुपात में विचारों में उत्तेजना कम हो जाती है: उसी अनुपात में अन्दर की ईश्वरीय शक्ति उभर जाती है।

गीता में साफ-साफ यह लिखा है कि अन्दर की ईश्वरीय शक्ति उत्तेजनारहित विचारों के माध्यम से ही उभरती है।

इसलिये विचारों से छुटकारा पाने की बात ही गलत हो जाती है। इस

प्रक्रिया से अन्दर का सत् बाहर निकलकर अन्दर और बाहर फैले हुए तम और रज को काटता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। अर्थात् मनुष्य भगवान के इस कार्य में सहयोग प्रदान नहीं करते: तब भगवान को संसार में फैले हुए तम और रज को काटने हेतु प्राकृतिक प्रकोप द्वारा संहार करना पड़ता है: जिसको भगवान की 'विनाश-लीला' कहते हैं। इस प्रकार भगवान का यह कार्य 'अन्दर से सत् को बाहर की ओर उभारना,' जो कि ध्यान-योग द्वारा होता है: अन्य सभी कार्यों की तुलना में हजारों गुना, लाखों गुना, करोड़ो गुना एवं अरबो गुना महत्वपूर्ण है। जो व्यक्ति इतने महत्वपूर्ण कार्य के लिए 24 घण्टों में से कम से कम एक डेढ़ घण्टा भी नहीं निकाल सकता है: मानों वह अपना समय एवं जीवन व्यर्थ खो रहा है।

जैसे-एक पढ़ने लिखने वाला छात्र अपना समय पढ़ाई-लिखाई के स्थान पर गुट्टियों के खेलने में लगा दे। जैसा कि अंग्रेजी में एक कहावत है "PENY WISE POUND FOOLISH" अर्थात् वह गुट्टियों अर्थात् पैसों के चक्कर में पौंड खो रहा है।

इस प्रकार जो व्यक्ति भगवान के सबसे महत्वपूर्ण कार्य में, जिस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनको जीवन मिला है; अपना सहयोग प्रदान नहीं कर रहा है: वह विभिन्न दु:खों के रूप में प्रकृति के दण्ड को भोगता है। जो व्यक्ति भगवान के इस कार्य को अर्थात् सत् को अन्दर से बाहर की ओर उभारता है: वह अपने जीवन के साथ-साथ अन्य प्राणियों के जीवन को सुखमय बनाने में सहायक होता है।

जो व्यक्ति 'ध्यान-योग' पर बैठता है, उसके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति के जीवन पर इतना प्रभाव पड़ता है: कि उनका जीवन भी सुखी होने लगता है। 'ध्यान-योग' पर लम्बे समय से बैठते रहने से निकटतम

व्यक्तियों की मनोवृत्ति बदलती है और बाहर की दुनिया के महत्व से अन्दर का महत्व अधिक बढ़ जाता है: जिससे उसका जीवन सुखमय होता है। यह प्राणी मात्र की सबसे बड़ी सेवा है।

ध्यान से अधिक महत्वपूर्ण एवं बड़ी सेवा और हो ही नहीं सकती। जिस सूक्ष्म सेवा से मात्र आंख मींचकर मौन बैठने से दूसरे व्यक्ति की मनोवृत्ति ही बदल जावे: उस सेवा की तुलना संसार की किसी भी स्थूल सेवा से नहीं की जा सकती।

इस सत् के प्रभाव से धीरे-धीरे अन्य प्राणियों की मनोवृत्ति भी सत्तेगुणी होने लगती है। जो व्यक्ति ध्यान-योग पर बैठता है: उसके निकटतम प्राणी भी ध्यान-योग पर बैठने अर्थात् सत् उभारने के मार्ग पर बैठने हेतु प्रेरित होते हैं। इस प्रकार

'ध्यान-योग' से वह शक्ति प्राप्त होती है, जिससे प्रभु जो कराये वही हम करते हैं। इसी को भक्ति एवं प्रेम कहते हैं,

इसी को कृष्ण-भक्ति, राम-भक्ति कहते हैं, जैसा कि रामायण में लिखा है-

राम भगति मनि उर बसे जाके।
दुःख लव लेस न सपनेहुँ ताके॥

इस प्रकार 'ध्यान-योग' वह विद्या है: जिसमें बिना कुछ किये अर्थात् मात्र दो-तीन बार आधा-आधा घण्टा चुपचाप आँख मींचकर बैठने (Relax) से; कुछ ही महीनों में ह्रदय ही बदल जाता है। मन में इनती शक्ति प्रदान होती है: कि जो चाहे सो प्राप्त हो जाता है। और जीवन को बाहरी पहलू में धन-वैभव तथा अन्दर के पहलू में अखण्ड आनन्द एवं शक्ति, मन की शक्ति और विकास के अनुरुप प्राप्त हाने लगते हैं।

ध्यान-योग से पूर्व कर्मों का योग अर्थात् प्रारब्ध इस प्रकार कट जाता है: कि उसका जीवन पर कोई विपरीत प्रभाव ही न पड़े। प्रारब्ध इतना

कट जाता है: कि प्रारब्ध कोई तकलीफ दे ही नहीं सकता। इस प्रकार 'ध्यान-योग' से इच्छा शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है: कि मन में जो इच्छा होती है, वही पूरी होने लगती है।

इस प्रकार जब मन जितना बलवान होता जाता है। अर्थात् मन की शक्ति बढ़ती जाती है, तब बुद्धि मन के आगे अपने आपको समर्पित (Surrender) कर देती है। इसी को 'शर्णागति' कहते हैं। ❑

मैं कौन हूं ?

कारलाइल बूढ़ा हो गया था। उसका शरीर अस्सी बसंत देख चुका था। जो देह कभी अति सुंदर और स्वस्थ थी: वह अब जर्जर और ढीली हो गई थी। जीवन संध्या के लक्षण प्रकट होने लगे थे। ऐसे बुढ़ापे की एक सुबह की घटना हैं। कारलाइल स्नानगृह में था। स्नान के बाद वह जैसे ही शरीर की पोंछने लगा: उसने अचानक देखा कि वह देह तो कब की जा चुकी है, जिसे वह अपनी मान बैठा था! शरीर तो बिल्कुल ही बदल गया है।

वह काया अब कहां है: जिसे उसने प्रेम किया था? जिस पर उसने गौरव किया था?

उसकी जगह यह खण्डहर ही तो शेष रह गया है। इसके साथ ही एक अत्यंत अभिनव-बोध भी उसके भीतर उठने लगा,

'शरीर तो वही नहीं है, लेकिन वह तो वही है। वह तो नहीं बदला है।'

तब उसने स्वयं से ही पूछा था, 'आह! तब फिर मैं कौन हूं?' यही प्रश्न प्रत्येक को अपने से पूछना होता है। प्रश्नों का प्रश्न यही है। जो इसे नहीं पूछते: वे कुछ भी नहीं पूछते हैं और जो पूछते ही नहीं, वे उत्तर कैसे पा सकेंगे? पूछो:

अपने अंतर्मन की गहराइयों में इस प्रश्न को गूंजने दो: 'मैं कौन हूं'? जब प्राणों की पूरी शक्ति से कोई पूछता है: तो अवश्य ही उत्तर उपलब्ध होता है। और, वह उत्तर जीवन की सारी दिशा और अर्थ को परिवर्तित कर देता है। उसके पूर्व मनुष्य अंधा (Ignorant) है। उसके बाद ही वह आंखों को पाता है। ❑

पुरुषार्थ, परिश्रम और प्रारब्ध

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

ध्यान साधना करके ईश्वर की शक्ति प्राप्त करने को शास्त्रों में पुरुषार्थ कहा है। बाहर के कामों को लग्न से करने का नाम परिश्रम है। परिश्रम करने से कामों में उतनी ही सफलता मिलती है: जितनी पुरुषार्थ से कमाई शक्ति हममें है। इसलिए परिश्रम से पुरुषार्थ ऊंची साधना है। बिना पुरुषार्थ और पिरश्रम के पिछले कर्मों के फल मिलने को प्रारब्ध कहते हैं। सबसे कीमती और जरूरी: हवा, प्रकाश, जीवनी शक्ति, प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियां आदि भगवान की दया से मिली हुई हैं। ध्यान साधना द्वारा मन में ईश्वरीय शक्ति भर जाती है। ईश्वर कृपा से हमारा जीवन उनके कल्याणकारी विधान से सुखमय चलता है। तब प्रारब्ध भी उसमें कोई बाधा-विघ्न नहीं डालता।

कलियुग में लोग पूजा अन्धविश्वास कर्मों के माध्यम से करते हैं। इन कर्मों का उसे ज्ञान नहीं होता। अज्ञानता यहां तक हावी हो चुकी है कि वह पूजा तो करता है लेकिन पूजा का अर्थ नहीं समझता। ऐसे व्यक्तियों को ही मायावी दलदल में फंसा कहा जाता है। मायावी दलदल से ऊपर निकलने के लिए हमें पराजगत की जाग पैदा करनी है, पराजगत की शक्तियों को अनुभव करना है तथा लम्बी ध्यान साधना के अभ्यास के माध्यम से आन्तरिक चेतना को जागृत करके भावातीत क्षेत्र

(Transcendental Field), पराजगत और क्रियाओं के जगत के सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करना है। इस ज्ञान में ही दिव्य शक्तियों का रहस्य है, ज्ञान है और शक्तियों की प्राप्ति है। साधक को याद रखना चाहिए कि मात्र ब्रह्मसुख की शक्ति की प्राप्ति ही दिव्य जगत और भावातीत क्षेत्र की शक्ति प्राप्ति है। यह प्राप्ति हमारे 'मैं' को होती है। 'मैं' भिन्न-भिन्न रास्तों द्वारा पराजगत और भावातीत क्षेत्र की शक्तियों को प्राप्त कर सकता है और सृष्टि के अलग-अलग सूक्ष्म और स्थूल क्षेत्रों के सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करता है। इन रास्तों को पूजा (Worship) कहते हैं।

साधनाओं का ध्येय होता है: जीवन को संवारना। उपासना काण्ड की साधना तो उन पहलुओं को भी संवार देती है: जिनको कभी-कभी कर्म ज्ञान के रास्ते पर संवारने से रह जाती है। उपासना काण्ड की साधना 'होने' की शक्ति प्रदान करती है। जीवन में जो कुछ भी हो जाता है: उसे करने की आवश्यकता ही क्या है? लेकिन यदि जीवन में कोई जरूरत है, तो वह आवश्यकता अपने आप पूरी नहीं हो पा रही है: तो कुछ करके तो पूरा करना ही पड़ेगा।

''करना और होना'' एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। जीवन में छोड़ना कुछ भी नहीं है। केवल उपासना (ध्यान) द्वारा होने की शक्ति बढ़ाना है। ज्यों-ज्यों होने की शक्ति बढ़ेगी: कुछ अपने आप छूट जाएगा और उसी अनुपात में 'करना' कम हो जाएगा।

हर प्राणी दो जगतों में रहता है: (1) इन्द्रिय जगत और (2) इन्द्रिय से परे जगत। दूसरे शब्दों में हर प्राणी के मन पर दो जगत के अनुभवों की छाप है; और यह छाप ही हमारे जीवन के सुख-दु:ख के कारण हैं। इन्द्रिय जगत के सुख साधन इन्द्रिय सुख के हो सकते हैं: लेकिन आन्तरिक सुख के नहीं। आन्तरिक सुख अर्थात् इन्द्रिय से परे जगत की अनुभूति के लिए आवश्यक है कि: मन इन्द्रियों से परे के जगत में काफी समय रहे या; यह

कहें कि इन्द्रिय जगत छूट जाय और हम पराजगत में रहें।

मन खण्ड और अखण्ड दोनों क्षेत्रों में विचरण करने में समर्थ है। जीवन केवल दो तरह के क्षणों में बंटा हुआ है: (1) कभी तो वह कर्म-ज्ञान के अधीन होता है और कभी (2) वह कर्म-ज्ञान की अधीनता से स्वतन्त्र होता है।

जिस समय वह कर्म के ज्ञान के अधीन नहीं है, उस समय उसका सम्पर्क ब्रह्म के तत्त्व से होने लगता है; और इस सम्पर्क की अनुभूति एक बहुत बड़े सुख (आनन्द) के रूप में-जो ज्ञानेन्दियों के सुख से भिन्न है-होती है। ज्यों-ज्यों यह सुख अधिक उभरता है, मन सुख की तलाश में इस क्षेत्र की ओर, और ज्यादा जुड़ता है। ऊपर बताए हुए दूसरी तरह के क्षण जीवन में बढ़ने लगते हैं। ज्यों-ज्यों ये क्षण बढ़ते हैं; त्यों-त्यों आनन्द की तीव्रता (Intensity) बढ़ती है। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-35 : सोच-समझ कर रहे, 'मैं' का है अरु खण्ड।
जो बिन 'मैं' के हो रहा, उसमें घुला अखण्ड॥

जब तक व्यक्ति किसी विषय को समझ कर और उस पर विचार कर कोई काम करता है: तब तक बाह्य-जगत की चेतना ही सक्रिय रहती है। दूसरे शब्दों में उसका 'मैं' अथवा अहं (Ego) उसके मूल में उपस्थित रहता है और उसे केवल खण्ड की शक्तियां ही प्राप्त होती हैं। इसी को बुद्धि-नियंत्रित जीवन कहते हैं। लेकिन जिसके कर्म मन के माध्यम (ध्यान) से आत्मा की शक्ति द्वारा प्रेरित होते हैं: उसे क्रिया करने के पूर्व कुछ भी पढ़-सुन कर समझना और बुद्धि से विचार नहीं करना पड़ता। उसके कार्य बाह्य चेतना के 'मैं' की

अर्थात् अहं की अनुपस्थिति में होते हैं; और ऐसे लोगों का जीवन ही धीरे-धीरे और अधिक सुखी होता जाता है।

ध्यान क्या है ?

''आन्तरिक क्षेत्र में मन का विचरण ही 'ध्यान' है।'' कर्म ही हमें बताता है: कि हमारा मन कहां है? जब मन प्रयासपूर्ण कर्मों में रहता है: उस समय वह बुद्धि और इन्द्रियों के साथ रहता है। अत: हम कहते हैं कि मन बाहर है। ऐसे कर्मों से हमारा 'मैं' हमेशा जुड़ा रहता है। जब मन इन्द्रियों की मदद नहीं लेता और मात्र विचारों के क्षेत्र में विचरण करता है: जैसे जब साधक एकान्त में किसी कुचालक (Bad Conduct of Electricity) पर आंख बन्द करके अन्धेरे में बैठ जाता है: उस समय उसका मन केवल विचारों की दुनियां में रहता है-तब दो संभावनाएं रहती हैं।

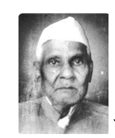

1. कभी विचार उसके 'मैं' से जुड़े होते हैं और
2. कभी विचार 'मैं' से जुड़े नहीं होते।

जिस समय उसके विचार मैं से जुड़े होते हैं, मन आन्तिरक जगत और बाहर के जगत के बार्डर पर रहता है:

परन्तु जब उसके विचार उसके 'मैं' से अलग हो जाते हैं: उस समय उसका मन आन्तरिक क्षेत्र में विचरण करता है और यही ध्यान (Meditation) है।

इसीलिए महान संत कबीर ने भी समझाया कि-

जब मैं था तब हरि नाहीं।
जब हरि था तब मैं नाहीं।

नदी जब समुद्र में मिल जाती है, तब समुद्र में नदी को ढूंढना असंभव होता है।

इसी प्रकार से ध्यान का अर्थ है: 'मैं' का हरि योग। यदि मैं नदी के समान (खण्ड) है: तो हरि समुद्र के समान (अखण्ड) है।

इसीलिए जितने समय के लिए दोनों का मिलन होता है: उतने समय तक 'मैं' को ढूंढना असंभव रहता है।

ध्यान के लिए हमें क्या करना है ?

हम नित्य सुषुप्ति की अवस्था में जाते हैं: लेकिन करने के क्षेत्र में हमें अपनी निद्रा का स्थान और निद्रा के लिए बिस्तर ढूंढना पड़ता है। इसी तरह से ध्यान तो अपने-आप लग जाएगा। लेकिन ध्यान के लिए हमें एकान्त वातावरण ढूंढना चाहिए और एकान्त में अंधेरा करके किसी कुचालक (Bad Conduct of Electricity) पर आंख बन्द करके बैठ जाना है। मात्र एक बार अपने इष्टदेव को मन में स्मरण करें और फिर मन को स्वतंत्र छोड़ दें। मन अपने-आप कभी 'मैं' से जुड़ेगा और कभी फिसल कर आन्तरिक जगत में विचरण करने लगेगा। ध्यान रहे: कि मन की गतिशीलता का चिन्ह् विचारों का उठना है। इसलिए आन्तरिक विचरण के समय जो विचार उठते हैं: उन्हें रोकने की चेष्टा न करें।

'करने' का अर्थ है: 'मैं' से जुड़ना और ध्यान का अर्थ है: 'मैं' से अलग हो जाना।

'मैं' से अलग रहने वाले विचार: मात्र निकलते हुए विचार होते हैं। और ये निकलते हुए विचार: आन्तरिक जगत की सफाई से संबंध रखते हैं। यदि किसी बर्तन में कुछ वस्तु भर दी जाए तो जितनी जगह वस्तु लेती है: उतनी हवा बर्तन से बाहर निकल जाती है। लेकिन यदि वस्तु बर्तन से निकाल ली जाए तो हवा अपने आप उस बर्तन में भर जाती है। बिल्कुल इसी प्रकार से

आन्तरिक जगत के कर्मों (ध्यान योग अथवा Meditation) द्वारा जितनी ही सफाई मन में हो जाती है: उसी अनुपात में ब्रह्म की शक्ति मन में पिरो जाती है।

यहां पर बर्तन की तुलना मन से की गई है, वस्तु की तुलना निकलते हुए विचारों से की गई है और हवा की तुलना ब्रह्म की शक्ति से की गई है। अत: हम कह सकते हैं कि

ध्यान वह कर्म है: जो हमारे मन पर पड़े हुए इन्द्रिय जगत के प्राणियों को बाहर निकाल कर मन में ब्रह्म की शक्ति (आनन्द अथवा Bliss) पिरोने में मदद करती है।

समाज में एक कहावत प्रचलित है कि सच्चे मन से ईश्वर को पुकारें: तो ईश्वर हमारी अवश्य सुनता है। आज के समाज में इस कहावत का अर्थ यही निकालते हैं: कि यदि मन में किसी तरह की बेईमानी नहीं है, तो ईश्वर आपकी अवश्य सुनेगा। लोगों के मन में यह प्रश्न उठने लगता है कि यह कहावत सतयुग के मनुष्यों के लिए कही गई होगी: कलयुग के मनुष्यों के जीवन में तो ऐसा नहीं होता। सत्य यह है कि

सच्चे मन का अर्थ है: कि वह मन जो इन्द्रिय जगत के कर्मों से प्रभावित न हो।

ऐसे प्रभाव मन में एक मिलावट है और मन सच्चा नहीं रहता। ऊपर हमने देखा कि ध्यान कर्म के माध्यम से आन्तरिक जगत पर इन्द्रिय जगत के कर्मों का प्रभाव निकाल कर हम अपने मन में हरि का प्रताप पिरोने में सफल होते हैं और इस हरि के प्रताप से तर-बतर मन ही सच्चा मन है। इसी के विषय में संत तुलसी दास ने कहा है:

जो इच्छा करिहौं मन माहीं।
हरि प्रताप कछु दुर्लभ नाहीं॥

सृष्टि के समस्त कर्मों का विभाजन दो तरह के कर्मों में हो जाता है: प्रयासपूर्ण कर्म और प्रयासहीन कर्म।

1. प्रयासपूर्ण कर्म बुद्धि और इन्द्रियों के माध्यम से होते हैं और

2. प्रयासहीन कर्म मन का विचरण आन्तरिक जगत में; या कहें कि बुद्धि और इन्द्रिय से परे होता है। यह संसार में 'मैं' से भी परे होता है। ऐसे कर्मों को आराम (Relax) का कर्म भी कहते हैं।

ध्यान कर्म तो मात्र आराम कर्म है।

समाज इस सत्य के प्रति जागरूक नहीं है: कि मात्र आराम कर्म के माध्यम से वह अपने इन्द्रिय जगत की क्रियाओं में दिव्य शक्तियों का योग प्राप्त कर सकता है।

आराम कर्म द्वारा मन में ब्रह्मतत्व पिरोते हैं और ब्रह्मतत्व पिरोने से मन उच्च स्तर की जागृति को प्राप्त होता है।

मनुष्य जितने उच्च स्तर की जागृति में आराम होने देता है: वह उतने ही गहरे आराम को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् हम जिस चेतना में जितना गहरा आराम प्राप्त कर लेते हैं: तुलनात्मक दृष्टि से उससे भी ऊंची चेतना को प्राप्त हो जाते हैं। सारांश यह है कि

उच्च चेतना की प्राप्ति जागृत अवस्था में गहरे से गहरे आराम को प्राप्त करके; की जा सकती है।

समाज का साधारण मनुष्य तो मात्र सबसे निम्न चेतना अर्थात् निद्रा की चेतना में आराम से परिचित है।

जागृत अवस्था में गहरा आराम ही गहरा ध्यान है। इस सत्य से परिचित न होने के कारण: समाज के अधिकतर लोग प्रयासपूर्ण कर्मों द्वारा ईश्वर का ध्यान करने का प्रयत्न करते हैं और जीवन में असफल रहते हैं। ❑

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER